International Journal of Research in Social Sciences
Volume 9, Issue 5 (May 2019)
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

वैदिक साहित्य में प्रकृति विज्ञान चिंतन

डॉ प्रियंका प्रियदर्शिनी

विषय– संस्कृत

बी0आर0ए0बी0यू0, मुजफ्फरपुर, बिहार।

वैदिक और पौराणिक साहित्यों में आदित्य को एक संघ देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिकाव्य में चर्चा है कि अदिति के गर्भ से जो तैंतीस देवगण उत्पन्न हुए, उनमें द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, एकादश रूद्र और दो अश्विनी कुमार थे।[1] इनमें से द्वादश आदित्य माघ आदि मासों से पौष तक क्रमशः उदीयमान् होते रहते हैं–

अरूणो माघ मासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा।
चैत्रमासे तु वेदांगो भानुर्वैशाखतानः।।
ज्येष्ठमासे तपेन्द्रिः आषाढे तपते रविः।
गभस्तिः श्रावणे मासे यमो भाद्रपदे तथा।।
इषे सुवर्णरेताश्च कार्तिके च दिवाकरः।
मार्गशीर्षे तपन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः।।
पुरूषस्तवधिके मासे मासाधिक्येषु कल्पयेत्।
इति ते द्वादशादित्याः काश्यपेयाः प्रकीर्तिताः।।

आकाशः शब्दगुणः अर्थात् शब्द जिसका गुण है वह आकाश है। आकाश को शून्य माना गया है। किंतु यह शून्यता उसकी रिक्तता का द्योतक नहीं वरन् पूर्णता का प्रतीकांकन है। 'श्रीदुर्गासप्तशती' में भगवती दुर्गा ने स्वयं को शून्य साक्षिणी देवी के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए इस आकाश की दिव्यता को स्पष्टता प्रदान किया है– शून्यानां शून्यसाक्षिणी। (देव्यथर्वशीर्षम्/24)

'अथर्ववेद' में कहा गया है कि ब्रह्मरूपिणी जगन्माता आत्मस्वरूप पर आकाशादि का निर्माण करती है–

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः........................।
(श्रीदुर्गासप्तशती, देव्थर्वशीर्षम्/6½)

'गगनं गगनाकारः' से आकाश की असीमता स्वयं में सिद्ध है। यह अनुपम अथवा अतुलनीय है। सभी सूर्य, चन्द्र, तारक, ग्रह, तथा नक्षत्रादि इसके अंदर भ्रमणशील और गतिमान् रहते हैं। यक्ष, गन्धर्व और देवगणादि कभी अपने निवास–स्थल के रूप में इसका प्रयोग करते हैं तो कभी मार्ग के रूप में। फिर भी यह शून्याकार है। इसे अनुचिह्न (इम्प्रिंट)– रहित कहा गया है। यह सहस्राक्ष है। तारकगण इसके चमकते हुए नेत्र हैं। इनके डुबते ही इस आकाश में अंधकार की परिव्याप्ति हो जाती है। संध्या–काल में जब आकाश में मेघ लगता है तो ऐसा जान पड़ता है कि यह किसी सजीव प्राणी की तरह अपने शरीर पर रक्तरंजित घाव ही पट्टी लगा लिया है। वैदिक विज्ञान आकाश को बिल्कुल शून्य नहीं माना गया है। दार्शनिक प्रक्रिया में शब्द–तन्मात्रा से आकाश का प्रादुर्भाव माना गया है। तात्पर्य यह हैं, कि जिस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक वायु के दो प्रकार 'Air' तथा 'Wind' स्वीकार करते है, जिनमें पहला सब जगह जमा है और दूसरा शरीर पर धक्का देनेवाली एक लहर है। उसी प्रकार वैदिक विज्ञान भी शब्द के दो भेद मानते हैं, एक वह जो सर्वत्र व्याप्त है। इससे रहित कोई स्थान नहीं है। यह विभु और नित्य माना जाता है। किंतु उसी में संयोगादि के द्वारा लहर उठने से हमारी श्रोत्रेन्द्रियों से गृहीत हो जाता है।[2]

निष्कर्षतः व्यापक शब्द घन आकाश है और उसकी लहर शब्द–रूप उसका गुण है। पहले वैज्ञानिकों की यह मान्यता थी कि शब्द वायु प्राण है। लेकिन जब रेडियो के आविष्कार होने तथा सुदूर प्रान्त से उच्चरित शब्द अक्षरशः सुनाई देने लगे तब यह धारणा खंडित हो गई। क्योंकि वायु का वेग इतना तीव्र नहीं है कि हजारों मील की दूरी से किया गया शब्द क्षणमात्र में श्रुतिसुलभ हो जाए। उसके बाद अन्य पाश्चात्य चिन्तक 'ईथर' नामक तत्त्व का गुण शब्द है, ऐसा माना। परन्तु तत्कालीन अन्य विद्वानों ने इस मत का खण्डन कर शब्द को 'स्पेस' को ही गुण स्वीकार किया। इस संदर्भ में प्राच्य वैदिक वैज्ञानिक यह मानते हैं कि 'ईथर' सिद्धांत ही स्थिर होगा, क्योंकि यही वैदिक विज्ञान का आकाश–तत्त्व है, जिसका शब्द गुण शास्त्रों में उल्लिखित है। सम्भावना यह व्यक्त की जाती है कि 'ईथर' शब्द का सम्बन्ध इन्द्र शब्द से सिद्ध हो और ऐन्द्री वाक् कहकर शब्द को इन्द्र के साथ जोड़कर श्रुति का आदर आधुनिक वैज्ञानिक करें।[3]

आकाश का प्रदूषण दो प्रकार के हैं– 1. वायुमंडल में जहरीली गैस के फैलने से और 2. ओजोन परत के बिगड़ने से।

हम जानते हैं कि हमारे उपर वायु का एक आवरण है, जिसे वायुमंडल कहा जाता है। यदि पृथ्वी के ऊपर आकाश नामक कोई तत्त्व है तो पृथ्वी और आकाश मध्य का भाग वायुमंडल ही है। वायु में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि गैसों की एक निश्चित मात्रा है, जिसके अनुपात में असंतुलन की स्थिति

ही इसका प्रदूषण है। जंगल में लगनेवाली आग, ज्वालामुखी की राख, धूल–भरी आंधी और उड़ते हुए परागकण, रेडियोधर्मी धूल, कोयला तथा पेट्रोलियम आदि पदार्थो के जलने और नाभिकीय विखंडन आदि से वायुमंडल में जहरीली गैसें फैलती हैं एवं आकाश प्रदूषित होता है। पृथ्वी से 20–30 किलोमीटर तक की उंचाई का वायुमंडल, जिस वायु–परत से आच्छादित है, उसे ओजोन मंडल कहते हैं। आज हमारे बीच यह भी चिंतन का विषय बना हुआ है कि ओजोन की परत पतली होती जा रही है या फिर इसमें छिद्र हो गया है, जिसके कारण भू–तल का तापमान निरंतर बढ़ रहा है।

ओजोन–परत नुकसान पहुंचानेवाली सूर्य की पराबैंगनी विकिरण से पृथ्वी की रक्षा करती है। इस विकिरण से त्वचा का कैंसर और मोतियाबिंद जैसे रोग होते हैं। वातावरण में मौजूद क्लोरोफ्लोरोकार्बन ओजोन–परत के पतला होने का मुख्य कारण है।

मौसम संगठन के अनुसार यह छिद्र दक्षित अर्जेन्टीना के पेंटागन क्षेत्र में उसुहिया के ऊपर फैल गया है। जिससे पृथ्वी पर पराबैंगनी विकिरण में इजाफा हो रहा है, जो पृथ्वी पर पाए जानेवाले जीव–जंतुओं के लिए काफी घातक है। उल्लेखनीय है कि क्लोरो–फ्लोरो–कार्बन गैसों में क्लोरीन, फ्लोरीन और ब्रोमीन जैसी गैसों के अणु होते हैं। इन गैसों का इस्तेमाल 1930 के दशक में प्रशीतकों, शीतगृहों, रेफ्रीजरेटरों, शेविंग क्रीमों में किया गया था, जो समय के साथ बढ़ता ही गया। वैज्ञानिक दृष्टि से यह मानव–निर्मित गैसीय समूह है। यह रंगहीन, गंधहीन तथा पारदर्शी होता है। इसमें तेल को विलीन करने की अद्भूत क्षमता होती है। यह मानव–शरीर के लिए बहुत हानिकारक तो नहीं है। फिर भी एक खतरनाक प्रदूषक है, जो पृथ्वी की छतरी रूपी ओजोन परत के अणुओं के साथ अभिक्रिया करके उन्हें तोड़ देते हैं। आधुनिक काल में यह विश्वस्तरीय चिंतन का विषय है।

व्यक्ति और समुदाय पारिस्थितिकीय तंत्र की प्राकृतिक इकाईयां है। जब मानव समाज के लोगों द्वारा प्राकृतिक पदार्थो का अधिकाधिक दोहन किया जाता है अथवा उसे बिगाड़ने या नष्ट करने का प्रयास होता है तो ऐसे पर्यावरण को प्रकृति हठात् नियंत्रित करती है। के.मेयर्स ने अपनी पुस्तक 'द रैबिट इन ऑस्ट्रेलिया' में यह प्रमाणित कर दिया है जब खरगोशों की अधिक संख्या ने पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला तब प्रकृति की प्रेरणा से ये खरगोश किसी जहरीली घास को खाकर मौत के शिकार हो गये। फलतः उनकी संख्या काफी कम हो गई और बढ़ती प्रतिकूल स्थितियों पर स्वयं नियंत्रण हो गया।[4]

प्रकृति जीव–जंतुओं को ही नहीं वरन् वनस्पतियों को भी नियंत्रित करती है। किसी स्थान विशेष में जीव अथवा पौधों की जो प्रजाति होती है वहाँ उनके अन्य सहयोगी सदस्य भी होते हैं जो एक–दूसरे

की सहायता करते हैं। नोवेल पुरस्कार विजेता पाल दिराक ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि स्थूल एवं सूक्ष्म सबको एक ही प्रकृति नियंत्रित करती है। प्रकृति के इस अद्‌भुत सिद्धांत को ब्रिटिश अंतरिक्षशास्त्री जॉन ग्रीविंग ने 'द गोल्डी लॉक्स इफेक्ट' के सिद्धांत से यह सिद्ध किया है कि अंधकार एवं प्रकाश, ज्ञान और अज्ञान तथा सत्य एवं असत्य के बीच में भी प्रकृति का संतुलन सिद्धांत अनवरत गति से कार्य करता रहता है।[5]

मानव प्रकृति का एक अतिमहत्त्वपूर्ण अंग है। ईश्वर ने मनुष्य को पैदा करने से पूर्व ही उसके जीवन को सुखमय बनाने–हेतु बहुविध तत्त्वों यथा– भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति इत्यादि का सृजन किया था। सृष्टि के प्रारंभिक चरण में मनुष्य और प्रकृति के बीच पूर्ण समन्वय था। मानव भी इनका उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करते हुए आगे बढ़ता गया। परवर्तीकाल में मानव अपने जीवन को और अधिक सुखद और सुविधा–संपन्न बनाने का सामूहिक प्रयास शुरू किया। अपने को भौतिकवादी वस्तुओं की ओर धकेलने लगा। कृत्रिम वस्तुओं के निर्माण और प्रयोग बढ़ने लगे। प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग निर्ममतापूर्वक करने लगा। मनुष्य की वृद्धि इस स्तर पर पहुँच गई कि उसे इससे होनेवाले दुष्परिणामों का भी ख्याल नहीं रहा। वह अपने को प्रकृति से भिन्न एक अलग इकाई मानकर स्वयं को सृष्टि का केन्द्र बिन्दु समझने लगा। तब से प्रकृति के साथ उसका संबंध बिगड़ने लगा है।

आज मानव और प्रकृति के बीच के रिश्ते इस स्तर पर पहुँच चुके हैं कि दोनों एक दूसरे के विनाश पर तुले हैं। सच तो यह है कि प्रकृति को नष्ट करने का दुस्साहस तो मनुष्य ही कर रहा है। आबादी बढ़ाने, पेड़–पौधे को काटने, कल–कारखाने स्थापित करने, नदियों पर बांध बनाने तथा जंगली जानवरों को नष्ट करने जैसे अनेकानेक काले कारनामे इस दिशा में सहयोगी सिद्ध हुए हैं। प्रकृति भी अपनी बचाव में खुलकर सामने आ गई है। वह भी मानव के इस कुकृत्य के विरोध में डटकर खड़ी हैं। वह कहीं मरू प्रदेश बनाकर, कहीं बाढ़ और भूकंप द्वारा करोड़ों की आबादी नष्ट कर, कभी भीषण गर्मी तो कभी भयानक सर्दी लाकर मनुष्य से इसका बदला चुका रही है।

पर्यावरण– परि+आवरण, परि अर्थात् चारों ओर, विशेष रूप से, आवरण (आ+वृ+ल्युट्) अर्थात् घेरा, चहारदीवारी, ढ़कना, पर्दा इत्यादि।

इस प्रकार हमारे चारों ओर का जो प्राकृतिक आवरण है, उसे पर्यावरण कहते हैं। दूसरे शब्दों में जिन प्राकृतिक उपादानों से हम सम्यक् रूप से आवृत हैं, पर्यावरण कहलाता है। भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति, मानव तथा मानवेतर जीव–जंतु सभी इस पर्यावरण के अंग हैं। विश्व का यह दृश्यमान्

International Journal of Research in Social Sciences
Volume 9, Issue 5 (May 2019)
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

रूप, जो हमारे चारों ओर एक आवरण के रूप में अवस्थित है, वह सामान्य अर्थ में तो पर्यावरण है लेकिन व्यापक अर्थ में प्रकृति है। पर्यावरण को अंग्रेजी में इन्वायरन्मेट कहा जाता है, जिसका अर्थ है– पड़ोस या आस–पास की वस्तु। 'इनवायरन्मेन्ट' शब्द से ही मिलता–जुलता एक और अंगरेजी का शब्द है–Ecology जिससे Ecological Balance जैसे शब्द भी बने हैं। Ecology का अर्थ होता है– पारिस्थितिकी। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी व्यवहारगत समान शब्द रहने के बावजूद आपस में कुछ मौलिक अंतर को छिपाए रखे हैं। पर्यावरण हमारे आस–पास का वातावरण है, पारिस्थितिकी उस वातावरण के अध्ययन का विज्ञान है।

पौधे, जंतुओं और मानव–सहित सभी जैविक और अजैविक वातावरण, जिसके अंदर अथवा जिनके साथ हम पारस्परिक क्रिया करते हैं, पर्यावरण कहलाता है। यहाँ एक बात स्पष्ट करना है कि प्रकृति अपनी संपूर्णता में ब्रह्माण्ड–स्वरूप है किंतु पर्यावरण स्थान विशेष के रूप में अलग–अलग हो सकता है।

ऊपर वर्णित तथ्यों के अनुरूप पर्यावरण के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैंः–

1. जैविक और 2. अजैविक

सामान्यतः छोटे–बड़े जीव–जंतु, पेड़–पौधे तथा मानव एक जैविक पर्यावरण का निर्माण करते है। अजैव पर्यावरण के अंतर्गत भूमि, जल, वायु, सूर्य प्रकाश, ताप, नमी, वर्षा, आर्द्रता, दाब तथा वायु–वेग आदि के साथ–साथ अन्य अकार्बनिक पदार्थ आते हैं। इसके अतिरिक्त मानवीय क्रियाओं द्वारा भी एक पर्यावरण का निर्माण होता है, जो मानव–व्यवहार को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। इसके अंतर्गत मानव–जीवन के अनेक पक्ष आते हैं। जैसे– ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक एवं सौंदर्यबोधात्मक इत्यादि। इनमें सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य का उद्‌भव और विकास समाज के अंदर ही होता है। मनुष्य के अंदर अपने पर्यावरण से पारस्परिक क्रिया करने की तीव्र प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है। उसके लिए एकाकी जीवन बिताना अत्यंत दुष्कर होता है। जिस व्यक्ति का पालन–पोषण जितना सभ्य, स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण में होता है, वह व्यक्ति उतना ही सफल और आदर्श नागरिक होता है। यदि व्यक्ति का निवास प्रदूषित समाज में होता है तो उसमें आपराधिक प्रवृत्ति की प्रबल संभावनाएँ बनती हैं।

भूमि, जल तथा वायु एक ऐसे आवरण का निर्माण करते है जिससे मनुष्य की सभी मूलभूत आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। विज्ञान की भाषा में इसे जीवमंडल कहा जाता है। जीवमंडल वह क्षेत्र है, जहाँ तक वायु की संभावना है। विज्ञानवेत्ता इसे 16 कि.मी. तक की ऊँचाई मानते हैं। हमारा जीवमंडल तीन भागों में पृथक् है–

International Journal of Research in Social Sciences
Volume 9, Issue 5 (May 2019)
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

1. स्थल मंडल 2. जल–मंडल तथा 3. वायु–मंडल।

1. **स्थल–मंडल**– पृथ्वी का वह भाग जिसपर पेड़–पौधे हैं, मिट्टी, रेत और चट्टाने हैं, स्थल मंडल कहलाता है।
2. **जल–मंडल**–धरती का वह भाग जिसमें जल है, जल मंडल कहलाता है।
3. **वायु–मंडल**– धरती के उपर लगभग 100 कि.मी. की उंचाई तक फैला हुआ, जो गैसीय आवरण है, उसे वायु–मंडल कहा जाता है।

सौरमंडल के सभी नौ ग्रहों में एक मात्र पृथ्वी ही ऐसा है, जहाँ जीवन है। यहाँ जीवनोपयोगी सभी संसाधन समुचित मात्रा में उपलब्ध हैं। पेड़–पौधे तथा जीव–जंतु हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते बल्कि हमारे अन्योन्य क्रिया में भी सहायता प्रदान करते हैं। विविध प्रकार की वनस्पतियों से युक्त सुरम्य वन–प्रदेश को देखने से हमारा मनोरंजन होता है। मोर आदि सुन्दर पक्षियाँ हमारे मन को लुभाते हैं। कोयल की मधुर कूक हमें श्रवण–सुख देते हैं। ऐसे सुरम्य वातावरण से युक्त यह धरती भी आज प्रदूषित हो रही है।

जल हमारा प्राण–तत्त्व है। यह मानव–जीवन का रस है। जीवन की सत्ता इस जल की सरसता पर ही निर्भर है। पृथ्वी पर जल के विविध स्रोतों में समुद्र, नदियाँ, झरने, झील, तालाब, कुएँ और भूमिगत जल हैं। वर्षा जल का प्राकृतिक स्रोत है। आज नदियों के प्रदूषित होने और वर्षा के नहीं होने की चर्चा यत्र–तत्र सुनाई पड़ती है। पेय जल के स्रोत सूख रहे हैं। जो बचे हुए हैं उनके जल भी पेय नहीं है।

वायु के बिना हम एक क्षण भी जिंदा नहीं रह सकते। अग्नि जैसे देवपुरूष को भी प्रज्ज्वलित रहने के लिए वायु की ही आवश्यकता होती है। वातावरण में उपलब्ध प्राणवायु जिसे ऑक्सीजन की संज्ञा दी गई है, की मात्रा लगभग 21 प्रतिशत है। नाइट्रोजन की मात्रा 78 प्रतिशत और 0.3 प्रतिशत कार्बनडायऑक्साइड है। इसके अतिरिक्त शेष 0.97 प्रतिशत में हाइड्रोजन ओजोन आदि हैं। आज वातावरण में जो ऊष्मा और गरमी बढ़ रही है तथा वर्षा नहीं हो रही है, उसका कारण वायु का प्रदूषित होना है।

प्रदूषण पर्यावरणीय तत्त्वों में अवांछनीय परिवर्तन है। प्रकृति के जीवों में इसके तत्त्वों के उपयोग से इसकी निश्चित मात्रा में कमी या वृद्धि होती रहती है, यही प्रदूषण है। भूमि, जल और वायु के भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक लक्षणों में दिनानुदिन परिवर्तन देखे जा सकते हैं। यही एतत् संबंधी प्रदूषण है। इसके अतिरिक्त महानगरीय जीवन में एक नया प्रदूषण उभरकर सामने आया है, जिसे हम ध्वनि प्रदूषण के नाम से जानते हैं।

दिन और रात का होना, मौसम का परिवर्तन, पेड़–पौधों का बढ़ना, जीव–जंतुओं का संवर्द्धन इत्यादि प्रकृति की चांचल्यावस्था का ही द्योतक है। एक सीमा से अधिक परिवर्तन ही प्रदूषण है। जैसे वायु का बहना सृष्टि के लिए अत्यंत ही आवश्यक है लेकिन तेज वायु को आंधी की संज्ञा दी जाती है। इससे पेड़–पौधे, घर–द्वार आदि टूट–फूट जाते हैं। मरू–प्रदेश में तो इसके प्रभाव से अनेक प्रकार की स्थलाकृतियों के निर्माण होते हैं। वर्षा नहीं होने से जल–तत्त्व की कमी हो जाएगी, फसल नहीं उगेगी, सभी जीव–जंतु भूख और प्यास से व्याकुल होकर मर जाएँगे। ठीक इसके विपरीत अतिवृष्टि बाढ़ जैसी विध्वंसात्मक स्थिति पैदा करती है, जिससे जान–माल का काफी नुकसान होता है। पेड़–पौधे, घर–द्वार सभी नष्ट हो जाते हैं, प्रलय की स्थिति पैदा हो जाती है।

प्रकृति के पास नियंत्रण की शक्ति और संसाधन दोनों हैं। यह एक सीमा तक पर्यावरण–प्रदूषण को नियंत्रित रखती है। लेकिन इसके बाद जब प्रकृति की शक्ति क्षीण पड़ने लगती है, तब इसका कुप्रभाव पर्यावरण के घटक जीवों पर पड़ने लगता है। यह सच है कि पर्यावरण के घटक जीवों में मनुष्य ही इसे सर्वाधिक प्रदूषित करता है। हम प्रातः काल उठते ही इसे प्रदूषित करने में लग जाते हैं। जलाशयों में शौच, स्नान और कपड़े धोने के लिए जाते हैं। श्वसन और परिवहन आदि कार्यो द्वारा वायु की स्वच्छता को नष्ट करते हैं। फलों और सब्जियों के छिलके तथा बचे हुए खाद्य पदार्थो को इधर–उधर फेंककर धरती माता की सुंदरता को मलिन ही नहीं करते अपितु दुर्गंध–युक्त वातावरण के निर्माण में सहयोग करते हैं।

हम पेड़–पौधे को काटकर पारिस्थितिकी असंतुलन ही पैदा नहीं करते बल्कि पर्यावरण में जीवन–दायिनी प्राण–वायु के बदले कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा को बढ़ाने में सहयोग करते हैं। हम खनिज पदार्थो का दोहन इस प्रकार कर रहे हैं कि हमें अपनी आनेवाली पीढ़ी की सुविधा या असुविधा का भी तनिक ख्याल नहीं रह गया है। यहाँ एक बात तो स्पष्ट है कि मनुष्य का जीवन जिस परिवेश में है, आवश्यक संसाधन भी उसे वहीं से प्राप्त करने होंगे। इसका अर्थ यह नहीं कि वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग निर्ममतापूर्वक करें या धरोहर के रूप में छोड़ने के लिए इसका उपयोग ही नहीं करें। इन दोनों परिस्थितियों से बचने का एक मात्र उपाय है– प्राकृतिक संसाधनों का न्याय संगत और बुद्धिमानीपूर्वक प्रयोग।

मानव और प्रकृति के बीच अन्योन्याश्रय संबंध ही नहीं है, बल्कि मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है। इसका जन्म प्रकृति की गोद में ही हुआ है। यह प्रकृति के आंचल में ही पला है, बढ़ा है, और इसकी चेतना की आँखें खुली हैं।

International Journal of Research in Social Sciences
Volume 9, Issue 5 (May 2019)
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

मनुष्य के जीवन का आरम्भ ही अरण्य और सरिता की सन्निकटता से है। इसका सफल उदाहरण यह है कि सभ्यता के आदिकाल से ही आबादी नदियों या समुद्र के किनारे बसा करती थीं। और उस स्थल को तीर्थ कहा जाता था। ऋषि–महर्षिगण तपस्या के लिए जंगल जाते थे। जंगल को अरण्य भी कहते हैं। ऋ+अन्य अरण्यम्, यहाँ 'ऋ' धातु का अर्थ है– अर्यते अर्थात् गम्यते, कदा? शेषे बयसि। अर्थात् चार आश्रमों में अंतिम संन्यास आश्रम में लोग 'कानन–पथ' की ओर चले जाते थे। अरण्य की दूसरी परिभाषा है– न रण्यम् अरण्यम्, जहाँ रण यानी युद्ध, तोड़–फोड़ या विनाश की कोई गुंजाइश नहीं हो, उसे अरण्य कहते हैं। वेदों के सहायक जो आरण्यक ग्रंथ हैं, उनकी रचनाएँ अरण्य में होने के कारण ही उनका यह नामकरण संभव हो पाया है।

अतः प्रकृति ही हमारे जीवन का आधार है स्तम्भ है। इसकी सुरक्षा ही हमारा ध्येय और धारणा होनी चाहिए। हमारे मंत्र–द्रष्टा ऋषियों ने आदिकाल से ही पर्यावरण परिरक्षण और प्रदूषण–निवारण पर ध्यान दिया है। पर्यावरण के प्रति उसकी सुरक्षात्मक दृष्टि वैदिक साहित्य के मंत्रों में भी देखी जाती है। उनकी दृष्टि में पर्यावरण परिरक्षण ही विश्व–कल्याण का एकमात्र साधन है। इनकी शांति में पर्यावरण की शुद्धता है। शांति मंत्र है–

ऊँ द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्ति पृथ्वी शान्तिः ओषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्तिः विश्वदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। (यजुर्वेद– 36/17)

'रामायण' महर्षि वाल्मीकि की उत्कृष्टतम रचना ही नहीं, विश्व–साहित्य का आदिग्रंथ है। यह धार्मिक और नैतिक आदर्शों के प्रतीक–ग्रंथ के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण मानवशास्त्र भी है। यह प्राचीन भारतीय आचार–विचार, ज्ञान–विचार और प्रज्ञा–प्रतिभा का विपुल भंडार है। यह आदिकवि के काल की धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक और सामाजिक सभ्यता का प्रमाण पुष्ट विवेचन किन्तु काव्यमय रूप है। विद्वानों का कथन है कि 'मानव जीवन का ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं, जिसका आभास उसमें न दिया गया हो।[6]

आर्यो की मातृभाषा में लिखित और आर्ष–ग्रंथों में आदिग्रंथ 'रामायण' के समाज–शास्त्री अध्ययन के पश्चात् ज्ञात होता है कि यह प्रथमतः प्रकृति–पर्यावरणीय शास्त्र है। और प्रकृति के विविध घटनाओं का अंकन करने की कला का प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकि से ही हुआ है।

साहित्य–सृजन का पर्यावरण के साथ अटूट संबंध आदिकाल से ही रहा है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में निवास करनेवाले महर्षि वाल्मीकि की काव्य–रचना सृजन के विकास क्षेत्र से दूरस्थ नहीं निकटस्थ संबंध रखता है। उनके काव्य का प्रथम श्लोक ही प्रत्यक्ष निरीक्षण की घटना पर आधारित ही

नहीं, हृदयस्थ वेदना का निष्पक्ष प्रस्फुटन है, पर्यावरणीय असंतुलनात्मक वेदना का काव्य—रूप है। श्लोक द्रष्टव्य है—

मा निषद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। (रामायण—1/2/15)

महर्षि वाल्मीकि के उपर्युक्त श्लोक की मार्मिकता पर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि व्याध के बाण से विद्ध नर क्रौंच की छटपटाहट से आहत क्रौंची के वियोग—रूपी कातर स्वर की अनुभूति—जन्य पीड़ा से इस मर्मभेदी श्लोक का प्रस्फुटन हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि काम—क्रीड़ा में लीन क्रौंच—युगल के नर वध से ही कवि के हृदय में यह करूणा क्यों जगी? पक्षी की हत्या करने के पीछे निषाद का उद्देश्य या उसकी आखेटक प्रवृति की सफलता तथा असफलता पर महर्षि का मुख क्यों नहीं खुला? इसका स्पष्ट उत्तर होगा— प्रकृति के नियम के विपरीत कार्य करनेवाले अपराधी के प्रति निष्ठुरता और घायल पक्षी के प्रति सहानुभूति—जन्य पीड़ा।

साहित्य—सृजन में पर्यावरण, पृष्ठभूमि का कार्य करता है। साहित्य में वर्णित घटनाएँ, पात्रों के क्रिया—कलाप को पाठक या दर्शक तभी सत्य समझता है जबकि देशकाल का सही परिवेश किसी भी कृति के अंतर्गत लक्षित होता है।[7]

साहित्यकार देशकाल की सीमाओं से अपने को आबद्ध रखकर अपने युग की परिस्थितियों और परिवेश का चित्रण करता है। देशकाल के अंतर्गत सामान्य रूप से किसी भी देश अथवा समाज की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ, आचार—विचार, रहन—सहन, रीति—रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि समझी जाती हैं।[8] साहित्यिक रचनाएँ और कला—कृतियाँ मनुष्य के मस्तिष्क पर किसी किस्म के सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्बों की उपज होती हैं।[9] परिवेश काव्य को, काव्य में वर्णित घटनाओं को और कवि हृदय के मन को प्रभावित करता है। प्राकृतिक परिवेश भाव—व्यंजना को सक्षम बनाता है। 'रामायण' में वर्णित सभी घटनाएँ परिवेश से ही प्रभावित हैं, चाहे वह राम का जन्म, राज्याभिषेक, वनगमन अथवा रावण के साथ युद्ध का ही क्यों न हों।

आदिकवि के काव्य में पर्यावरण के विविध पक्षों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। एक ओर इसमें अयोध्या और लंका जैसी नगरी है तो दूसरी ओर किस्किंधा जैसा रमणीय प्राकृतिक वन—प्रदेश भी। इसमें विशाल मधुमन्त, माहिष्मती और प्रतिष्ठानपुर आदि नगरों की भी चर्चा है। इसके अंदर हिमालय, कैलाश, मेरू, महेन्द्र, ऋष्यमूक, त्रिकूट तथा माल्यवान् आदि पर्वतों के भी नामोल्लेख हुए हैं।

'रामायण' में भारतवर्ष के भौगोलिक सीमा का ही वर्णन नहीं बल्कि नदियों, पर्वतों, निवासियों, पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों और जलवायु का भी वर्णन है। इसमें प्रयाग आदि तीर्थो, गंगादि पवित्र नदियाँ, नैमिषारण्य आदि वनों और कुरूक्षेत्र आदि पुण्य क्षेत्रों की भी चर्चा हुई है।[10] इसके अंदर मलद, करूष, दण्डक, मधुवन तथा अशोक वाटिका आदि वनों एवं उपवनों की चर्चा के साथ–साथ पम्पा, पंचाप्सर तथा सुदर्शन आदि सरोवरों तथा यमुना, सरयु, तमसा, शोणभद्र, नर्मदा, गोदावरी, सरस्वती, मंदाकिनी, तमसा तथा कौशिकी आदि नदियों के भी वर्णन हैं।

'रामायण' में वसंत, ग्रीष्म वर्षा, शरद् और हेमन्त आदि ऋतुओं के अतिरिक्त सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, संध्या, चंद्रोदय, मध्यरात्रि, पूर्णिमा और अमावस्या के साथ–साथ शुक्ल–पक्ष कृष्ण–पक्ष, त्रयोदशी, चतुर्दशी, उत्तरायण, तथा दक्षिणायण आदि की भी चर्चा है।

आदिकाव्य में आकाश एवं आकाशीय पिण्डों, ग्रह–नक्षत्रों, सूर्य–चंद्रादि ग्रहणों एवं उल्कापातों के भी उल्लेख हुए हैं। इसमें भूमि, जल एवं वायु के प्रदूषण एवं उसके संरक्षण के उपायों तथा वन तथा वन्य प्राणियों की भी चर्चा है।

सुग्रीव 'रामायण' का एक ऐसा पात्र है, जिसे संपूर्ण भूमंडल का ज्ञान है। राम–द्वारा सुग्रीव से यह पूछे जाने पर कि सखे! तुम समस्त भूमंडल के स्थानों का परिचय कैसे जानते हो?[11] इस संदर्भ में सुग्रीव–द्वारा विस्तार से प्रदत्त उत्तर उसके द्वारा समस्त भूमंडल का भ्रमण और प्रकृति के अवदानों का प्रत्यक्ष दर्शन का द्योतक है।[12]

हनुमान् अपने पिता वायुदेव की तरह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, जल और देवलोकों में निर्बाध गति से चलता है। उसे समुद्र, नदी, पर्वत, असुर, गंधर्व, नाग, मनुष्य और देवता आदि संपूर्ण लोकों का दिव्य ज्ञान है।[13]

आदिकाव्य में नदियों और पर्वतों के अस्तित्व का भी वर्णन है। इनके दीर्घकाल तक रहने और स्थायित्व की बात कही गई है। यह ब्रह्मा जी के उस आशीर्वचन से परिलक्षित होता है कि वे महर्षि वाल्मीकि को नदी और पर्वत की तरह 'रामायण' और इसकी कथा को लोगों में प्रचलित रहने को कहते हैं।[14]

'रामायण' में मानव–जीवन की नश्वरता का सफल चित्रण हुआ है। जिसका जन्म हुआ है, उसका मृत्यु अवश्यंभावी है। प्रातःकाल के बाद रात्रि और रात्रि के बाद प्रातःकाल यह क्रमनिर्बाध गति से चलता रहता है। वर्षा–ऋतु यदि पृथ्वी को जल से परिपूर्ण करता है तो ग्रीष्म उस जल को सुखाकर धरती

को पूर्व से ही जर्जर बनाए रखता है। समुद्र की ओर आनेवाली नदियाँ अपने उद्गम स्थल की ओर कदापि नहीं लौटती हैं–

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्ण समुद्रमुदकार्णवम्।।
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्तयाशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः।।

(रामायण–2/105/19–20)

उपर्युक्त श्लोकों में आयु की क्षीणता को जीवन की नश्वरता के साथ जोड़कर दिखाया गया है। जैसे रात बीत जाती है, वह लौटकर फिर नहीं आती है। समुद्र की ओर जानेवाली यमुना उधर से लौटती नहीं और ग्रीष्म–समुद्र में तो सूर्य की किरणें जल को अत्यंत शीघ्रता से सोखती रहती है।

संसार में जितने संचय है, उन सबो का अंत विनाश है। उत्थान का अंत पतन है, संयोग का अंत वियोग है और जीवन का अंत मरण है–

सर्वेक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।।

(रामायण–7/52/11)

काल की गति सम्यक् है, इसीलिए इसे समय कहा जाता है। यह सभी प्राणियों के लिए अपना एक सा आचरण बना रखा है। इसके समक्ष कोई बड़ा या छोटा नहीं है।

प्रकृति में मिलन और बिछुड़न का क्रम तो चलता ही रहता है। फिर भी सीता के वियोग में राम और शोक से प्रकृति भी शोकाकुल हो जाती है। सारा वन–प्रदेश नीरव हो जाता है। वसंत ऋतु का आगमन राम को सीता–विरह में अत्यधिक व्याकुल कर रहा है। वे कहते हैं कि अनङ्ग वेदना से उत्पन्न हुई शोकाग्नि वसन्त–ऋतु के गुणों का ईधन पाकर इस प्रकार बढ़ रही है कि लगता है यह मुझे अविलंब जला देगी। वन के मनोहर वृक्षों को देखने से अपनी प्रियतमा के विरह–रूपी अनङ्ग ज्वर मुझमें अब और बढ़ रहा है–

मन्मथायासम्भूतो वसन्तगुणवर्धितः।।
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव।
अपश्यतस्तां वनिता पश्यतो रूचिरान् द्रुमान।।

International Journal of Research in Social Sciences
Volume 9, Issue 5 (May 2019)
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति।

(रामायण– 4/1/32–33½)

वसंत ऋतुराज है। इस समय वातावरण अत्यंत मनोहर और दोष–रहित रहता है। वैसे तो चैत्र मास स्वयं में सुन्दर है, किन्तु वसंत के आगमन से यह और मनोहर हो जाता है। पम्पा के तटवर्ती वनों के अवलोक के समय भगवान् राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे लक्ष्मण! यह सुगन्ध का मास है। इस समय मंद–मंद सुखदायिनी हवा चल रही है। मन को व्यथित करने वाला काम इस समय अपनी उत्कर्षावस्था पर है। वृक्षों में फूल और फल लग गए हैं। सब ओर मनोहर सुगन्ध छा रही हैं। फूलों के साथ वायु क्रीड़ा करते हुए कुछ को तो नीचे गिरा दिया है, कुछ गिरने को है। इस समय मलय चंदन का स्पर्श करके बहनेवाली यह शीतल वायु शरीर से छू जाने पर अत्यंत सुखद जान पड़ता है। वृक्षों की शाखाएँ जब इनके संसर्ग में आती हैं तो इनसे लगे फूल वायु के वेग से हिलने लगते हैं, जिससे भ्रमर अपने–अपने स्थान से विचलित होकर उड़ने लगते हैं। लगता है कि वायु के नृत्य के साथ घुमकर भ्रमर गीत के द्वारा उसका यशोगान कर रहा हो। मतवाले कोकिल कलकल नाद करते हैं। भांति–भांति की बोली बोलनेवाले विचित्र पक्षी चारों ओर वृक्षों, झाड़ियों और लताओं की ओर उड़ रहे हैं। पक्षिणियाँ अपने–अपने नर पक्षियों से संयुक्त होकर आनंद का अनुभव कर रही है। पर्वत–शिखर पर काम–पीड़ित मोरनी भी मोर के साथ नृत्य करते हुए संयोग सुख का आनन्द ले रही है। सरोवर के जल वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ एवं श्याम हैं। खिले हुए पद्म और उत्पल इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। नई–नई घासों से ढ़के हुए भू–क्षेत्र पर बिखरे हुए फूलों से ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने यहाँ गलीचे बिछा दिए हों। मधुमास का पवन स्वच्छंद विचरण करता है।

भगवान् राम को विश्वास है कि यह वन जनककुमारी सीता के पास भी गया होगा। और जहाँ वह निवास करती हैं निश्चय ही वह मेरी ही तरह शोक कर रही होगी।[15]

हेमंत ऋतु तो राम का प्रिय रहा है। इसमें ओस और पाले से ठिठुर जाते हैं, जब अतिशीतल होने के कारण उपयोग के योग्य नहीं रहता है। आग लोगों को प्रिय लगने लगते हैं किन्तु धरती रबी फसलों के नव अंकुरण से हरी–भरी होने लगती है।[16] शरद् में आकाश निर्मल रहता है। न कहीं बिजली की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है और न ही कहीं मेघ की घटा दिखाई पड़ती है। चंद्र–मंडल साफ दिखाई देता है। इसकी चांदनी इतनी प्यारी होती है कि भगवान् राम का हृदय भी सीता मिलन के लिए व्याकुल हो उठता है।[17]

वर्षा ऋतुओं की रानी है। ग्रीष्म की तपिश से झुलसी हुई पृथ्वी वर्षाकाल में नूतन जल से भींगकर नवयौवन को प्राप्त करती है। समस्त आकाश–मंडल पर्वत के समान प्रतीत होने वाले मेघों से आच्छन्न हो जाते हैं। बादलों का लेप लग जाने से आकाश–मंडल के सभी ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि अदृश्य हो जाते हैं। वन के पेड़–पौधे भी अगाध जल को पाकर अपनी हरियाली को बिखेरने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। वन्य–प्रांत के जीवों में मोर अपना नृत्योत्सव आरंभ कर देते हैं। खिले हुए केवड़े के फूल की सुगंध पाकर मदवर्षी गजराज मतवाले हो उठते हैं। भ्रमरों के समूह गीत गाने लगते हैं। मेढ़कों की आवाज भी भ्रमरों के सुर में ताल भरते हैं। इस प्रकार वनों में संगीतोत्सव का आनंद आरंभ हो जाता है।[18]

'प्रकृति के रम्य क्रीड़ा में बसने के कारण आदिकवि ने प्रकृति के अह्लादकारी और सुखद–स्वरूप के वर्णन करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इस संदर्भ में विचारकों की मान्यता है कि 'रामायण' में प्रकृति के कुछ चित्र ऐसे मिलते हैं, जिसमें प्रकृति की क्रिया या उसकी स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि का हृदय उन दृश्यों के साथ रहने के कारण तदाकार हो जाता है। और इसलिए ये चित्र पूर्ण संश्लिष्ट हैं।[19] उदाहरणार्थ राम–द्वारा मंदाकिनी की शोभा का वर्णन द्रष्टव्य है–

विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसमैरूपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्।।
मारूतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्।।
निर्धूतान् वायुना पश्य विततान् पुष्पसंचयान्।
पोप्लूयमानानपरान् पश्य त्वं तनुमध्यमे।।

(रामायण– 2/95/3,8,10)

अर्थात् हे सीते! इस विचित्र रमणीय पुलिनवाली मंदाकिनी नदी को देखो, जिसके तट पर हंस और सारस पक्षी विचरण कर रहे हैं, और पुष्पों से युक्त है। पवन से प्रताड़ित वृक्षों से युक्त यह पर्वत ऐसा लगता है, मानो वह नृत्य कर रहा है। और नदी पर चारों ओर पुष्प–पत्रों का विकीर्ण करता है। वायु के झोंकों से नदी–तट पर बिखरे हुए पुष्पों को देखो और उनको भी देखो, जो उड़कर नदी–जल में जा गिरे हैं, वे कैसे तैर रहे हैं।[20]

कहीं–कहीं प्रकृति के क्रिया–कलापों की तुलना मानव–प्रकृति से की गई है। ऐसे स्थलों पर दोनों में (प्रकृति–क्रिया और मानवीय जीवन में) सामंजस्य स्थापित किया गया है।[21]

दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्त्रिणाम्।
संध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः।।
अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम्।
कपोताङ्गारूणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः।।
अल्पवर्णा हि तरवो घनीभूताः समन्ततः।
विप्रकृष्टेन्द्रिये देशे न प्रकाशन्ति वै दिशः।
(रामायण–2/119/4,6,7)
एष फुल्लार्जुनः शैलः कैतकैरभिवासितः।
सुग्रीव इव शांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते।।
(रामायण– 4/28/9)

'प्रथम चित्र में मानव–जीवन के भाव को उद्भासित किया गया है। संध्या का समय है, जब मानव अपने क्रिया–कलापों से विश्रांति लेना चाहता है। और दूसरे में सुग्रीव की विशिष्ट मानव–प्रकृति को अंकित किया गया है। इनमें कलात्मक प्रवृत्ति अवश्य पाई जाती है किंतु सभी चित्र अपने स्वाभाविक सौंदर्य से उल्लसित हैं।[22]

1 रामायण– 4/14/14
2. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पं0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ सं0–114
3. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पं0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ सं0–115
4. पर्यावरण, त्रैमासिक पत्रिका, भारत सरकार, अंक–2, मार्च 1998, पृष्ठ सं0– 15
5. पर्यावरण, त्रैमासिक पत्रिका, भारत सरकार, अंक–2, मार्च 1998, पृष्ठ सं0– 14
6. सी.एन.जुत्सी, एस्पेक्ट्स ऑफ आर्यन सिविलिजेशन एज डेपिक्टेड इन द रामायण (चतुर्थ ओरिएंटल कान्फ्रेंस का विवरण)
7. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी उपन्यासकला, हिंदी सूचना–विभाग, लखनऊ– 1995, पृष्ठ सं0– 300
8. तथैव
9. माओत्सेतुंग, कला साहित्य और संस्कृति, पीपुल्स लिट्रेसी, दिल्ली– 1983
10. रामायण– 7/111/13–13½
11. रामायण– 4/46/1
12. रामायण– 4/46 सर्ग
13. रामायण– 4/44/3–4
14. यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।।
तावत् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति। (रामायण– 1/2/36–36½)
15. रामायण– 1/12/1, 4/1 सर्ग
16. रामायण– 3/16/4–5
17. रामायण– 4/30/2,5
18. रामायण– 4/28 सर्ग
19. संस्कृत महाकाव्य की परंपरा, पृष्ठ सं. 67
20. तथैव
21. तथैव
22. तथैव, पृष्ठ सं0 167–168

!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!